

दक्षिण भारत की मंदिर अर्थव्यवस्था का विश्लेषण

दिनेश कुमार

MA IGNOU

(bdinesh326@gmail.com)

सारांश-

दक्षिण भारत के मंदिर केवल धार्मिक स्थल नहीं रहे, बल्कि वे आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक गतिविधियों के केंद्र के रूप में विकसित हुए। चोल, पल्लव, पांड्य, चालुक्य और विजयनगर जैसे राजवंशों ने मंदिरों को संरक्षण देकर उन्हें कृषि, शिल्प, व्यापार, श्रम-प्रबंधन और सांस्कृतिक उत्पादन का महत्वपूर्ण आधार बनाया। यह शोध पत्र दक्षिण भारत की मंदिर-आधारित अर्थव्यवस्था के संरचनात्मक तत्वों, आय-व्यय, प्रशासनिक ढांचे, सामाजिक प्रभाव, शिल्प-विकास, व्यापारिक तंत्र तथा उनके दीर्घकालिक ऐतिहासिक योगदान का विश्लेषण प्रस्तुत करता है। साथ ही यह मंदिर अर्थव्यवस्था की सीमाओं और इसके पतन के कारणों पर भी चर्चा करता है।

मुख्य शब्द (key words) – मंदिर अर्थव्यवस्था, देवदासी परंपरा, शिल्पी विकास, सामाजिक प्रभाव, प्रशासनिक ढांचा, व्यापारिक तंत्र, वास्तु कला

भूमिका- दक्षिण भारत में मंदिर परंपरा अत्यंत प्राचीन और गहन है। 6वीं-7वीं शताब्दी से मंदिर केवल पूजा स्थल न रहकर जटिल सामाजिक-आर्थिक संस्थानों में परिवर्तित हो गए। मंदिरों को मिलने वाले भूमि अनुदान, दान, कर और व्यापारिक सहयोग ने दक्षिण भारतीय अर्थव्यवस्था में एक विशिष्ट मंदिर केन्द्रित आर्थिक संरचना (**Temple-Centric Economic Structure**) तैयार किया। यह संरचना न केवल कृषि उत्पादन और सिंचाई व्यवस्था को नियंत्रित करती थी, बल्कि शिल्प-उद्योग, व्यापार-गिल्ड, सांस्कृतिक कला, और स्थानीय शासन, इन सभी क्षेत्रों पर गहरा प्रभाव डालती थी। दक्षिण भारत में मंदिर केवल धार्मिक पूजा के केंद्र नहीं रहे हैं, बल्कि सदियों से ये इस क्षेत्र की अर्थव्यवस्था, सामाजिक संरचना और सांस्कृतिक विकास के महत्वपूर्ण केन्द्रबिंदु रहे हैं। चोल, विजयनगर और अन्य राजवंशों के तहत, मंदिरों ने प्रमुख भूस्वामी, बैंकों, और रोजगार सृजन करने वाली संस्थाओं के रूप में कार्य किया। दक्षिण भारत के मंदिरों की अर्थव्यवस्था विश्व की उन विशिष्ट ऐतिहासिक प्रणालियों में से एक है जहाँ धार्मिक संस्थाएँ आर्थिक इंजन की तरह कार्य करती थीं। विशेष तौर पर चोल और विजयनगर काल में मंदिरों ने राज्य के आर्थिक ढांचे को स्थिर किया और क्षेत्रीय विकास को गति दी। यह शोध-पत्र इसी बहुआयामी मंदिर अर्थव्यवस्था की प्रकृति एवं प्रभावों का समग्र विश्लेषण करता है।

मंदिर अर्थव्यवस्था का विकास निम्नलिखित राजवंशों के संरक्षण से हुआ -

पल्लव (6वीं-9वीं शताब्दी): मंदिर निर्माण की प्रारंभिक संरचना

चोल (9वीं-13वीं): मंदिरों को प्रशासनिक और आर्थिक केंद्र में बदलना

पांड्य और चालुक्य: भूमि दान और शिल्प-संस्कृति का विस्तार

विजयनगर (14वीं-17वीं): मंदिर-केन्द्रित शहरीकरण और व्यापार विस्तार

इन कालों में मंदिरों को राज्य का प्रत्यक्ष समर्थन, व्यापक भूमि-दान और व्यापारिक गिल्डों का सहयोग प्राप्त हुआ। परिणामस्वरूप मंदिर एक संगठित आर्थिक-राजस्व प्रणाली के रूप में विकसित हुए।

दक्षिण भारतीय मंदिरों की आय अत्यंत विविध और संगठित थी। मध्यकालीन भारत (लगभग 8वीं से 16वीं शताब्दी ईस्वी) के संदर्भ में दक्षिण भारतीय मंदिरों की आय के स्रोत कहीं अधिक संगठित और व्यापक थे। ये मंदिर केवल धार्मिक केंद्र नहीं, बल्कि प्रमुख आर्थिक नियामक और भू-धारक थे। मंदिरों को भूमि अनुदान भी मिलता

राजाओं, सामंतों, ब्राह्मणों और ग्रामवासियों द्वारा मंदिरों को लगातार भूमि अनुदान दिए जाते थे। ये दान स्थायी (अक्षय) संपत्ति बनाते थे, जिसका कभी बंटवारा नहीं होता था, बल्कि वह समय के साथ बढ़ती ही जाती थी। मंदिरों के पास बेशुमार जमीनें होती थीं। वे इन जमीनों को किसानों को खेती के लिए देते थे और उपज का एक निश्चित भाग भू-राजस्व या कर के रूप में प्राप्त करते थे। यह आय का सबसे नियमित और महत्वपूर्ण भाग था। चोल और विजयनगर साम्राज्यों में, मंदिर अक्सर कृषि विकास और सिंचाई योजनाओं (जैसे तालाब और नहरों का निर्माण) में अपनी आय का बहुतांश निवेश करते थे, जिससे स्थानीय कृषि उपज बढ़ती थी और उनकी आय भी सुनिश्चित होती थी। मध्यकाल में बड़े मंदिर बैंकों की तरह कार्य करते थे। व्यापारी निगम (ट्रेडिंग गिल्ड्स) और आम जनता अपनी बहुमूल्य वस्तुएँ, सोने के सिक्के और जवाहरात मंदिरों में जमा करते थे, क्योंकि इन्हें सबसे सुरक्षित माना जाता था। मंदिर जमा धन को निवेश करते थे या ऋण देते थे, जिससे उन्हें ब्याज के रूप में आय प्राप्त होती थी। व्यापारिक निगम और शिल्पकार मंदिरों के रखरखाव के लिए नियमित अंतराल पर दान (नियमित कर) देते थे। मंदिरों की इस विपुल आय का उपयोग केवल धार्मिक अनुष्ठानों के लिए नहीं, बल्कि शिक्षा (पाठशालाएँ), अन्नदान (भोजन वितरण), स्वास्थ्य सेवाएँ और सैकड़ों लोगों को रोजगार देने में भी किया जाता था।

प्राचीन और मध्यकाल में, दक्षिण भारतीय मंदिरों ने एक स्वायत्त और शक्तिशाली आर्थिक इकाई के रूप में कार्य किया। दक्षिण भारत में मंदिर अर्थव्यवस्था का उदय मुख्य रूप से चोल और विजयनगर जैसे साम्राज्यों के दौरान हुआ, हालाँकि इसकी नींव उससे भी पहले पड़ चुकी थी। मंदिर अर्थव्यवस्था का विकास विभिन्न तरीकों से व्यापक कमाने पर हुआ। इसकी भूमिका अपने आप में एक विशाल पैमाने पर पहुंच गई। मंदिर अर्थव्यवस्था के विभिन्न आधार थे। अपने विभिन्न आयाम पर इन्होंने बेहतर कार्य किया। प्राचीन और मध्यकाल में बड़े मंदिर बैंकों की तरह कार्य करते थे। लोग अपनी बहुमूल्य वस्तुएँ और धन मंदिरों में जमा करते थे, जिन्हें वे सबसे सुरक्षित मानते थे। मंदिर ऋण (लोन) सुविधाएँ भी उपलब्ध कराते थे। कौटिल्य ने भी अर्थशास्त्र में 'देवताध्यक्ष' का विधान किया था और आपातकाल में राजा को मंदिरों की संपत्ति का उपयोग करने का अधिकार दिया था। मंदिर केवल पूजा-पाठ का स्थान नहीं थे, बल्कि वे सामुदायिक जीवन के केंद्र थे। कई शहरों और गाँवों का निर्माण मंदिरों के चारों ओर ही होता था, जहाँ मंदिर केंद्र में स्थापित होते थे और उसके बाद रिहायशी और व्यावसायिक क्षेत्र बसाए जाते थे। मंदिर व्यापार और वाणिज्य के लिए मिलन स्थल (Rendezvous) के रूप में कार्य करते थे। व्यापारी, कारीगर और विद्वान यहाँ वस्तुओं, शिल्पकला तकनीकों और विचारों का आदान-प्रदान करते थे। मंदिरों से जुड़े बाजार आर्थिक विनिमय के केंद्र बन गए थे। मंदिर शिक्षा (संस्कृत पाठशालाएँ), स्वास्थ्य सेवाएँ, भोजन (अन्नदान), और विश्राम (छात्रावास, विश्राम स्थल) जैसी लोक-कल्याण की गतिविधियाँ भी संचालित करते थे। मंदिरों ने कला, वास्तुकला, साहित्य और ज्ञान-विज्ञान को संरक्षण दिया। द्रविड़ शैली की वास्तुकला (पल्लवों द्वारा स्थापित और चोलों, पांड्यों, विजयनगर साम्राज्यों द्वारा विकसित) दक्षिण भारत की पहचान बन गई। अपनी भव्यता, आकर्षक शिल्पकला और अलौकिक विग्रहों के कारण ये स्थल आध्यात्मिक होने के साथ-साथ पर्यटन के भी प्रमुख केंद्र थे, जिससे स्थानीय अर्थव्यवस्था को लाभ होता था। इस प्रकार, दक्षिण

भारत के मंदिर धार्मिक अनुष्ठानों के साथ-साथ आर्थिक इंजन और सामाजिक नियामक के रूप में कार्य करते थे, जो स्थानीय क्षेत्रों के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते थे। दक्षिण भारत का सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक ढांचा प्राचीन काल से ही मंदिर-केन्द्रित रहा है। चोल, पाण्ड्य, चालुक्य, होयसळ, विजयनगर तथा नायकों के काल में मंदिर केवल धार्मिक आस्था के स्थल नहीं थे, बल्कि वे शिक्षा, कला, नगरीय जीवन, कृषि और व्यापारिक गतिविधियों के प्रमुख केन्द्र के रूप में उभरकर आए। इस तरह दक्षिण भारतीय मंदिरों ने एक ऐसी जटिल और समृद्ध मंदिर अर्थव्यवस्था को जन्म दिया, जिसका प्रभाव आज भी कई रूपों में देखा जा सकता है। मंदिर अर्थव्यवस्था से आशय उस आर्थिक संरचना से है जिसमें मंदिर भूमि के स्वामित्व, कृषि उत्पादन, व्यापारिक लेन-देन, शिल्प और कारीगरी, दान-प्रथा, तीर्थ-पर्यटन आदि के माध्यम से एक सशक्त आर्थिक केंद्र के रूप में काम करते हैं। दक्षिण भारत में मंदिरों के चारों ओर पूरे नगर बसते थे, और वहाँ रोजगार, सामाजिक सेवाएँ तथा सांस्कृतिक क्रियाएँ आपस में जुड़ी हुई थीं। दक्षिण भारत में चोल और विजयनगर काल तक मंदिरों के पास विशाल कृषि भूमि होती थी। इसे देवदासीन, देवभोग, या ब्राह्मणों को दान के रूप में प्राप्त किया जाता था। इससे अनेक प्रभाव पैदा हुए। मंदिरों के पास धन और संसाधन होते थे, जिनका उपयोग वे तालाबों, कुओं, नहरों और बाँधों के निर्माण में करते थे। कावेरी डेल्टा क्षेत्र में मंदिरों के संरक्षण से कृषि भूमि का व्यापक विस्तार हुआ। मंदिर भूमि पर किसान, मजदूर, चरवाहे, तेली, बढ़ई, लोहार आदि कार्यरत रहते थे, जिससे ग्रामीण अर्थव्यवस्था सक्रिय रहती थी। मंदिर कृषि उत्पादन का एक बड़ा हिस्सा संग्रहित करते थे, जो धार्मिक आयोजनों, त्योहारों और भोजों में उपयोग होता था। इससे उत्पादन और ग्रामीण व्यापार दोनों को बढ़ावा मिला। दक्षिण भारत के प्रमुख मंदिर जैसे- मदुरै का मीनाक्षी मंदिर, तंजावर का बृहदेश्वर मंदिर, श्रीरंगम का रंगनाथस्वामी मंदिर विस्तृत बाजारों के केंद्र थे। ऐतिहासिक अभिलेख बताते हैं कि मंदिरों के आसपास ऐनाकुट्टम, नगरम, मणिग्रम जैसे व्यापारी-गिल्ड सक्रिय थे। वे मंदिरों को अनाज, मसाले, धातु, रेशम, घी, फूल और वस्त्र की आपूर्ति करते थे। तीर्थयात्रियों की आँक से भोजनोत्सव, सराय, दकानें, हस्तकला बाजार और परिवहन सेवाओं का विकास हुआ। चोल काल में दक्षिण भारतीय व्यापारियों ने दक्षिण-पूर्व एशिया तक व्यापार किया, जहाँ मंदिरों को धूप, कपड़े, मूर्तियाँ और धातु उपकरण भेजे जाते थे। इस व्यापार से मंदिरों की आमदनी बढ़ती थी। मंदिर अर्थव्यवस्था का सबसे बड़ा प्रभाव दक्षिण भारत की विशिष्ट कला और वास्तुकला पर दिखाई देता है। मूर्तिकार, रंगकर्मी, नर्तक, संगीतकार, चित्रकार तथा वास्तुकार मंदिर से जुड़ी गतिविधियों में स्थायी रोजगार पाते थे। बृहदेश्वर मंदिर, विरुपाक्ष मंदिर, होयसलेश्वर मंदिर तथा मीनाक्षी मंदिर जैसे भव्य निर्माण मंदिर अर्थव्यवस्था की सुदृढ़ता का प्रमाण हैं। इन मंदिरों के निर्माण ने लाखों लोगों को रोजगार दिया। रत्नजडित मूर्तियाँ, कांस्य नटराज, पत्थर की नक्काशी, भित्ति-चित्र ये सब मंदिरों के संरक्षण में विकसित हुए।

मंदिर दक्षिण भारत के सामाजिक जीवन का केंद्र थे। त्योहार, जुलूस, रथोत्सव और संगीत-नृत्य कार्यक्रम समाज को जोड़ते थे। मंदिर सार्वजनिक जीवन का साझा मंच थे, जहाँ विभिन्न जातियाँ सह-अस्तित्व में थीं। मंदिर भोजन (अन्नदान), शिक्षा, चिकित्सा और सराय जैसी सेवाएँ प्रदान करते थे। मठ और पाठशालाएँ धार्मिक व लौकिक शिक्षण का महत्वपूर्ण माध्यम थीं। कुछ मंदिर गतिविधियों में उच्च जातियों का प्रभुत्व था, परंतु दक्षिण भारत में कई सेवाएँ—जैसे नदीवाद्य, नृत्य, कारीगरी—निचली जातियों द्वारा संचालित होती थीं। इस प्रकार मंदिर ने सामाजिक भूमिकाओं को स्थिर भी किया और कुछ हद तक गतिशील भी बनाया। मंदिर राज्य की वैधता और शक्ति के केंद्र थे। राजा स्वयं को “भगवान का प्रतिनिधि” कहलवाते थे। कभी कभी राजनीतिक वैभव को बढ़ाने के लिए राजा की मूर्ति देवालय में रख कर पूजा की जाती थी ताकि राजा की दैवीय शक्ति सिद्ध हो। मंदिरों में राजाओं का आर्थिक दान

उनकी प्रतिष्ठा और राजनीतिक आधार बढ़ाता था। मंदिर किराए, करों और उपहारों का प्रबंधन करते थे। कई मंदिर बड़े प्रशासनिक संस्थान की तरह काम करते थे—उनके पास खुद के लेखाकार, सैनिक और अधिकारी होते थे। कभी-कभी मंदिरों की संपत्ति पर नियंत्रण के लिए वंशों के बीच संघर्ष भी हुए, जैसे चोल-पाण्ड्य संघर्ष में। इससे समझ आता है कि मंदिर आर्थिक रूप से कितने शक्तिशाली थे। देवदासी परंपरा का प्रारंभ आर्थिक रूप से मंदिरों से ही जुड़ा था। यद्यपि बाद में इस व्यवस्था में शोषण बढ़ा, परंतु प्रारंभिक काल में देवदासियाँ संगीत, नृत्य और अनुष्ठानों की विशेषज्ञ मानी जाती थीं। महिलाएँ फूल आपूर्ति, व्रत-भोजन तैयारी, माला निर्माण, प्रसाद निर्माण जैसे कार्यों से आर्थिक रूप से मंदिर अर्थव्यवस्था का हिस्सा थीं। औपनिवेशिक काल के बाद भी दक्षिण भारत में मंदिर अर्थव्यवस्था मजबूत बनी रही। आज तिरुपति, मदुरै, रामेश्वरम, तंजावर, कांचीपुरम जैसे तीर्थस्थल करोड़ों की अर्थव्यवस्था को संचालित करते हैं। होटल, परिवहन, गाइड, प्रसाद उद्योग, वस्त्र और हस्तशिल्प सहित लाखों लोग इससे रोजगार पाते हैं। कई मंदिर आज भी अन्नदान, छात्रवृत्ति, अस्पताल और स्कूल चलाते हैं।

निष्कर्ष (Conclusion) - दक्षिण भारत की मंदिर अर्थव्यवस्था एक शक्तिशाली ऐतिहासिक विरासत है जो आज भी एक गतिशील आर्थिक इंजन के रूप में कार्य कर रही है। प्राचीन काल में ये कृषि, वित्त और सामुदायिक जीवन के नियामक थे, और आधुनिक काल में ये धार्मिक पर्यटन, जीडीपी में महत्वपूर्ण योगदान और रोजगार सृजन के माध्यम से अर्थव्यवस्था को गति देते हैं। हालाँकि, राज्य नियंत्रण, पारदर्शिता और धन के अधिकतम सामाजिक उपयोग जैसी चुनौतियों का समाधान करना आवश्यक है, ताकि ये संस्थान न केवल आस्था के केंद्र बने रहें, बल्कि समावेशी सामाजिक-आर्थिक विकास के भी आदर्श मॉडल बन सकें। दक्षिण भारत की मंदिर अर्थव्यवस्था केवल धार्मिक आयाम तक सीमित नहीं थी; यह पूरे समाज, राजनीति, कला और अर्थव्यवस्था को प्रभावित करने वाला व्यापक तंत्र थी। मंदिर—कृषि उत्पादन बढ़ाने वाले आर्थिक केंद्र, व्यापार और शिल्प को प्रोत्साहन देने वाले बाजार, कला-संस्कृति के रक्षक, सामाजिक सेवाओं के प्रदाता, राजनीतिक वैधता के प्रतीक के रूप में उभरे। इस प्रकार मंदिर अर्थव्यवस्था ने दक्षिण भारतीय समाज को एकीकृत, समृद्ध और सांस्कृतिक रूप से उन्नत बनाने में निर्णायक भूमिका निभाई। आज भी इसका प्रभाव पर्यटन, सांस्कृतिक धरोहर और स्थानीय अर्थव्यवस्था में देखा जा सकता है

संदर्भ ग्रंथ सूची (Bibliography)-

- Sastri, K.A. Nilakanta (Ed.). *A Concordance of the Names in the Chola Inscriptions*. Madras University, 1973.
- Karashima, Noboru (Ed.). *A Concordance of the Names in the Pandya Inscriptions*. Tokyo University Press, 1984.
- Hultzsch, E. *South Indian Inscriptions: Chola and Pallava Records*. ASI.
4. Stein, Burton. *Peasant State and Society in Medieval South India*. Oxford University Press, 1980.
5. Stein, Burton. *Vijayanagara*. Cambridge University Press, 1989.
- Appadurai, Arjun. *Worship and Conflict Under Colonial Rule: A South Indian Case*. Cambridge University Press, 1981.
- Swaminathan, S. *Temple Economy in South India*. Madras Historical Society, 1995.
- Heitzman, James. *Gifts of Power: Lordship in an Early Indian State*. Oxford University Press, 1997.
- Nilakanta Sastri, K.A. *The Cholas*. University of Madras, 1955.
- Nilakanta Sastri, K.A. *History of South India*. Oxford University Press, 1958.
- Champakalakshmi, R. *Trade, Ideology and Urbanization: South India 300 BC-AD 1300*. Oxford University Press, 1996.
- Karashima, Noboru. *South Indian History and Society: Studies from Inscriptions A.D. 850-1800*. Oxford University Press, 1984.
- Subbarayalu, Y. *South India under the Cholas*. Oxford University Press, 2012.
- Shulman, David. “The Temple Economy of South India.” *Journal of the Economic and Social History of the Orient*, vol. 23, no. 3, 1980.